प्रकरण ३

# साहित्य-प्रयोजन

❖❖❖

सृष्टि के निर्माण में विधाता का कोई न कोई उद्देश्य निहित है, उसी प्रकार मनुष्य प्रत्येक कार्य किसी न किसी उद्देश्य को लेकर होता है। निरुद्देश्य कार्य कोई भी नहीं सकता। कवि कल्पना सृष्टि का ब्रम्हा होता है। उसकी सृष्टि नियतिकृत नियमों से मुक्त है, फिर भी काव्य-रचना के पीछे उसका कोई विशिष्ट उद्देश्य अवश्यक होता है। यही काव्य या साहित्य का प्रयोजन कहलाता है। हेतु की अपेक्षा प्रयोजन का प्रश्न जटिल होता इस में व्यापकता का भाव तथा भविष्य का सपना निहित होता है। बाबू गुलाबराय ने भवि में स्थित प्रेरणा को प्रयोजन कहा है।

किसी वस्तु की रचना करने का अर्थ है उसे अतकनीकी ढंग से, किंतु फिर भी ज बूझकर और स्वेच्छा से बनाना। कवि जब कुछ नया रचता है तब उसमें उसका अ विशिष्ट प्रयोजन होता है, ओर वह रचना सापेक्ष होता है, परंतु कभी-कभी स्वरुप आ समान गुणधर्म तथा प्रयोग कर्ता की सुविधाजन्य आवश्यकता के अनुसार उस वस्तु से प्रयोजनों की अपेक्षा की जाती है या उसपर अन्य प्रयोजन थोपे जाते है, तब वस्तु की निजी विशिष्टता खतरे में पड जाती है। दुनिया की कोई भी वस्तु अपनी मौलिकता से अन्य मूल्यवान वस्तु का पर्याय नहीं बन सकती। जैसे - पियानों और मेज की साम्यता देखकर कोई पियानों का उपयोग मेज के समान लिखने-पढने के लिए करे तो उसका विशिष्ट प्रयोजन नहीं होगा। वैसे ही कुर्सी से स्टूल का काम लेना, दरवाजे के का बेडशिट की तरह उपयोग करना आदि बातें कुछ ऐसी ही है जहाँ विशिष्ट को सा बनाने का आग्रह है। पियानों पर मेज का, परदे पर बेडशिट का प्रयोजन यह अतिरिक्त या थोपा हुआ प्रयोजन है।

कोई कवि या साहित्यकार क्यों लिखता है, किन उपादानों से साहित्य सृजन में प्र होता है इस सम्बन्ध में भारतीय साहित्यशास्त्रीयों ने जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसे देख ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने युग की प्रवृत्ति के अनुरुप कुछ अपनी रुचि भी जोड दी जो उनका ये प्रयोजन प्रयास अतिरिक्त या लदा हुआ-सा लगता है। यहाँ हम संस्कृत आचार्यों, पाश्चात्य विद्वानों तथा हिंदी के कुछ कतिपय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत साहित्य प्रयो का संक्षेप में परिचय प्राप्त करेंगे।

संस्कृत के आचार्यों से प्रस्तुत प्रयोजन :

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य रचयिता तथा काव्य का अस्वाद लेनेवाला पाठक दोनो को मद्देनजर रखकर साहित्य प्रयोजन पर विचार किया है। सर्व प्रथम आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के प्रयोजनों का उल्लेख मिलता है। यह प्रयोजन केवल नाटक तक ही सीमित नहीं अपितु संपूर्ण काव्य के लिए भी लागू होता है। उन्होंने काव्य-प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए कहा है -

**"दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।**
**विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति॥**

अर्थात दुःखों से, श्रमसे और शोक से पीडित लोगों को संसार में सुख की प्राप्ति नाटक से ही होती है। अतः नाटक केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं बल्कि उससे वीर जनों को उत्साह, कायरों को साहस तथा शोक में डूबे लोगों को सांत्वना मिलती है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र की रचना का प्रयोजन पर दुःख हरण बताया है। वे जनहित को नाटक का प्रयोजन मानते है। उन्होंने अन्य एक स्थान पर नाटक का प्रयोजन धर्म, यश, आयु, हित, ज्ञान व उपदेश आदि की प्राप्ति बताया है -

**"धर्म्य यशस्यमायुष्यं हित बुद्धि - विवर्धनम्।**
**लोकोपदेशजननं नाट्यमेयाद् भविष्यति॥"**

अर्थात धर्म, यश, आयुवृद्धि, हित-साधना, बुद्धि वर्धन एवं लोकोपदेश ही नाट्य का प्रयोजन है।

**आचार्य भामह** ने काव्य का प्रयोजन बतलाते हुए लिखा है कि सत्काव्य का अनुशीलन या रचना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय का तात्त्विक ज्ञान होता है, तथा कलाओं में निपुणता बढती है एवं यश तथा आनंद की प्राप्ति होती है। भामह ने काव्य के सात प्रयोजन माने है -

**"धमार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु चौ**
**करोति कीर्ति प्रीतिंच साधु काव्यनिबंन्धम्॥"** (काव्यालंकार)

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का तात्विक ज्ञान, कलाओं में निपुनता, कीर्ति और अलौकिक आनंद की प्राप्ति काव्य का प्रयोजन है।

**आचार्य वामन** ने कर्ता की दृष्टि से काव्य-प्रयोजनों पर विश्वास किया है। उनके अनुसार काव्य के दो प्रयोजन है - १) प्रीति २) कीर्ति। वामन जिसे प्रीति कहते है वे आनंद ही है। आनंद प्रीति साहित्य का दृश्य प्रयोजन है और कीर्ति अदृश्य-प्रयोजन। वे लिखते है-

**"काव्य सदृष्टा दृष्टार्थ प्रीति-कीर्ति हेतुत्वात्।"**

आचार्य आनंदवर्धन और अभिनव गुप्तने भी 'कीर्ति' को ही साहित्य का प्रयोजन माना है। प्रीति अर्थात आनंदानुभूति। काव्य का प्रधान प्रयोजन आनंद-प्राप्ति ही है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ का अंतिम मुख्य फल भी आनंद ही है। कवि कीर्ति जन्य

आनंद पाता है तो सहृदय रचना जन्य। अर्थात सहृदय जनों का मनोरंजन काव्य का उद्दे है। सत्काव्य की रचना कवि को अमर बनाती है।

**आचार्य रुद्रट** ने काव्य के नौ प्रयोजन माने है। यथा-युगान्त तक रहनेवाला जग व्यापी, यश, धन प्राप्ति, विपत्तिनाश, अलौकिक आनंद, आप्त कामना, धर्म, अर्थ, का और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति। परंतु यशपर अधिक जोर दिया है -

**"ज्वलदुज्वलवाप्रसरः सरस कुर्वन्महाकविः काव्यम्।**
**स्फुट्याकल्पमनल्प प्रतोनति यश प्रस्यापी॥"**

अर्थात दैदीप्यमान और निर्मल रचना का निर्माता महाकवि सरस काव्य की रच करता हुआ अपने तथा नायक के प्रत्यक्ष युगांत तक रहनेवाले जगतव्यापी यश का विस्त करता है।

**आचार्य कुंतक** की काव्य-प्रयोजन सम्बन्धी धारणा लगभग भामह से मिलती-जुलती वे कहते है -

**"धर्मादि साधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।**
**काव्यवन्धोऽभिजातानां हृदयाल्हादकारकः॥"**

अर्थात काव्य बंध उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्तियों के हृदय को आल्हादित करनेवाल और कोमल मृदु शैली में कहा हुआ धर्म आदि की सिद्धि का मार्ग है। पुरुषार्थ का उपदेः करनेवाले अन्य शास्त्रों से काव्य भिन्न होता है। जहाँ शास्त्रों में कठिन शैली का प्रयोग होत है वहाँ काव्य में मृदु भाषा-शैली का उपयोग होता है। अभिजात राजपुत्रादि के लिए काव प्रयोजन कहने का तात्पर्य कुंतक का यह है कि राजपुत्रादि वैभव को प्राप्त करके समस्त पृथ्वी के व्यवस्थापक बनकर, उत्तम उपदेश से शून्य होने के कारण कहीं समस्त लोव व्यवहार का नाश न करे, इसलिए उनके लिए काव्य विशेष रुप से आवश्यक है। कुंतव आगे कहते है कि व्यवहारिक मनुष्य को औचित्य से युक्त व्यवहार चातुर्य ज्ञान सत्काव्य ही मिलता है और काव्य से प्राप्त आनंद चतुर्वर्ग प्राप्ति से भी बढकर होता है। यह आन प्राप्ति ही काव्य का प्रयोजन है। वे लिखते है -

**"चतुर्ववर्गफालस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।**
**काव्यमृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥**

कुंतक अर्थात काव्यामृत का रस काव्य को समझनेवाले के अंतःकरण में चतुर्वर्ग (धर्म, अथ काम, मोक्ष) के आल्हाद से भी बढकर चत्कार उत्पन्न करता है।

कुंतक ने प्रयोजन विषय मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। उनकी धारणा से काव्य के तीन प्रयोजन है - १) व्यवहार औचित्य का ज्ञान २) चतुर्वर्ग-फल प्राप्ति ३) अलौकिव आनंद की प्राप्ति।

**आचार्य दण्डी** ने ज्ञान और यश की प्राप्ति को काव्य प्रयोजन कहा है। **आ. विश्वनाथ** ने काव्य प्रयोजन की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा है कि धर्मार्थ आदि चतुर्वर्ग की प्राप्ति

रसानन्द व्यवहार-ज्ञान तथा सरस उपदेश की उपलब्धि ही प्रमुख काव्य-प्रयोजन है।

**आचार्य मम्मट** - व्यापक दृष्टिवाले समन्वयात्मक विचारों के आचार्य रहे है। उक्त आचार्यों के काव्य-प्रयोजनों का समन्वयात्मक सार उन्हों ने जो काव्य-प्रयोजन के रुप में प्रस्तुत किए है वे ही भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वाधिक मान्य हुए है। यथा -

**"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेत्तरक्षतये।**
**सद्यः परिनिवृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे॥"**

अर्थात यश, धन, व्यवहार कुशलता, अनिष्ट-निवारण, आनंद, और कान्तासम्मित उपदेश साहित्य के प्रयोजन है। इन छः प्रयोजनों में से तीन (यश, अर्थ, अनिष्ट, निवारण) कवि निष्ठ है। सद्यपरिनिर्वृतये व्यवहारज्ञान, कान्ता सम्मित उपदेश ये तीन पाठकनिष्ट है। वैसे तो मम्मट के यह प्रयोजन संस्कृत के पूर्वचार्यों के मतो का संग्रह-मात्र है परंतु परवर्ती संस्कृत और हिंदी विद्वानों पर इन्ही का सर्वाधिक प्रभाव रहा है।

१) यश :

साहित्यकार के लिए यश एक प्रधान प्रेरक तत्व है। यश प्राप्ति की कामना हर एक व्यक्ति मे होती है। इसे कवि या साहित्यकार अपवाद कैसे? साहित्यकार में यदि यश की कामना न होती तो अपनी रचना के साथ वे अपना नाम कभी न लिखते। भृर्तृहरी के अनुसार कवि का भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है किंतु यश रुपी शरीर अमर रहता है। यह अमरता की कामना कवि को प्रेरित करती है ओर वह काव्य-सृजन करता है। यश-प्राप्ति की कामना हर युग के साहित्यकार मे पाई जाती है। आदिकाल रीतिकाल के रचनाकार यश के लिए ही लिखते रहे है। भक्तिकाल के कवि भी इस कामना से दूर नहीं रह सकते। 'सूरदास प्रभु', 'मीराँ के प्रभु', 'कहत कबीर' आदि अन्त्य वाक्य भक्त कवियों की रचना में उनकी अस्पष्ट यश-कामना उदाहरण ही कहे जा सकते है। आधुनिक काल के साहित्यकारों में भी यश की भावना प्रबल पाई जाती है। मिल्टन ने यश को मानव मन की कामना कहा है। कवियों में यश की उदात्त कामना स्वभावतः ही पाई जाती है। सामान्य मनुष्य तो यशस्वी बनना चाहता है। यश प्राप्ति के कारण उसकी कर्मशक्ति वृद्धिंगत होती है। इसीलिए दिनकर ने लिखा है - "प्रशंसा और प्रोत्साहन कवि प्रतिभा के आहार हैं।"

२) अर्थ :

साहित्य सृजन का भौतिक प्रयोजन में अर्थप्राप्ति सर्वाधिक महत्व की है। इसी के बिना संसारिक व्यवहार ठप्प होते है। हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवि प्रायः अर्थ के लिए ही काव्य-सृजन करते थे। बिहारी को उनके प्रत्येक दोहे के लिए एक मुहर मिलती थी। कहते है कि केशवदास को इक्कीस गाँव इनाम मे मिले थे। पुराने समय में कवि राजाश्रय में रहकर इसकी प्राप्ति करते थे। आज के आधुनिक कवि और लेखक भी केवल अर्थ के लिए काव्य रचना न करते हो, परंतु अर्थ प्राप्ति की कामना अवश्य रखते है। सरस्वती के साथ-साथ लक्ष्मी का दास बननेवाले साहित्यकारों की कमी नहीं है, परंतु धन की प्राप्ति काव्य

का एकमात्र प्रयोजन नहीं हो सकता। आजकल राजाश्रय का रूप पुरस्कार आदि में बदल गया है। जिन्हें पाने के लिए अनेक साहित्यकार लालायित रहते हैं। नोबूल पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, विविध संस्थाओं द्वारा दिए जानेवाले पुरस्कार आदि से अर्थ और यश दोनों एक साथ मिल जाते हैं।

**३) व्यवहार ज्ञान :**

साहित्य मन और बुद्धि का परिष्कार करके भौतिक यथार्थ का ज्ञान कराता है। जिस से व्यक्ति वास्तविकता की धरातल से उठकर कल्पना की उडाने भर आसमान में विचरण करना छोडकर वास्तविक जगत का अनुभव करने लगता है। साहित्य की विविध विधाओं नाटक, काव्य, महाकाव्य, कहानी, उपन्यास, धार्मिक, पौराणिक ग्रंथ आदि से नीति-रीति की व्यवहारिक बातों से व्यवहार ज्ञान प्राप्त होता है। जब कोई लेखक अपने जीवनानुभवों पर आधारित आदर्शों का प्रतिपादन करता है तब पाठक उनके आदर्शों को ग्रहण करने की कोशिश करता है।

इस दृष्टि से यह पाठकनिष्ठ प्रयोजन है। साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। इस में हर युग की रीति-नीति की बातों के अतिरिक्त उचित-अनुचित आदर्श, विश्वास-अंधविश्वास आदि के विवेचन से हम योग्य-अयोग्य का निर्णय कर पाने में समर्थ होते हैं।

**४) अमंगल का नाश :**

प्राचीन काल में अनिष्ट-निवारण के लिए काव्य सृजन किया जाता होगा क्योंकि मम्मट ने मयूर कवि का उदाहरण देकर कहा हे कि 'मयूर' कवि ने सूर्य की स्तुति के लिए 'सूर्यशतक' नामक ग्रंथ की रचना कर अपने को कुष्टरोग की पीडा से मुक्त कराया। किंवदंतियाँ है कि तुलसीदास ने 'हनुमान बाहुक' की रचनाकार अपनी बाहुपीडा से मुक्ति पाई। कुष्ट निवारणार्थ कवि पद्माकर ने 'गंगालहरी' की रचना की। भक्त कवियों की 'मेरा उद्धार करो' की पुकार उनके कष्ट निवारण का ही उदाहरण है। परंतु आज आधुनिक युग में इससे अभिप्राय समाज-कल्याण ही लेना चाहिए। आज का साहित्यकार अमंगल का नाश कर सामाजिक समता की मांग करता है।

**५) आनंद प्राप्ति :**

इस प्रयोजन को लगभग सभी संस्कृत आचार्यों ने स्वीकारा है। साहित्य सृजन से उत्पन्न आनंद लेखक और पाठक दोनों को मिलता है। यह आनंद सच्चा आत्मिक आनंद होता है जिससे जीवन की वेदना एवं विषमता दूर होकर शांति की स्थापना होती है। सृजनात्मकता का आनंद भौतिक सुखसमृद्धि की सुखानुभूति से भिन्न होता है, इसीलिए इसे अलौकिक आनंद कहा गया है। इस काव्यानंद को ही 'ब्रम्हानंद सहोदर' कहा है। इस समय की मानसिक अवस्था को अभिनव गुप्त ने 'हृदयसंवादात्मक तन्मयीभावन' कहा है।

**६) कान्तासम्मित उपदेश :**

साहित्य का प्रमुख प्रयोजन मनुष्य जीवन को संवारना है। मानवी जीवन में आदर्शों की

स्थापना कर उसे चरम सीमा तक पहुँचना उसका लक्ष्य है। साहित्य कान्तासमान मधुर वाणी से हितकारी भाव प्रकट कर इच्छित उद्देश्य की पूर्ति करता है। हितकारी भाव तो शास्त्र भी प्रकट करते है, परंतु शास्त्र में प्रकट हित का भाव बौद्धिक होता है। और साहित्य में प्रकट भाव प्रिय पत्नी के द्वारा मधुकर वाणी में दिए गए, उपदेशों के समान लालीत्यपूर्ण होता है। पिता द्वारा हितोपदेश तथा प्रिय पत्नी द्वारा दिए गए हितोपदेश मे 'हित' भाव जरुर रहेगा लेकिन प्रकटन शैली अलग-अलग होगी। पत्नी का हितोपदेश सीधा न होकर मधुर वाणी से युक्त होता है। साहित्यकार का उपदेश भी इसी तरह का होता है। यदि साहित्यकार सीधा उपदेश करने लगे तो वह साहित्य साहित्य न रहकर भाषण बन जाता है। वास्तव में उपदेश तीन प्रकार के होते है - १) प्रभुसम्मित उपदेश - जिस में आज्ञा होती है और उचित - अनुचित का निर्देश होता है। वेद शास्त्रों के उपदेश इसी श्रेणी में आते है। २) सुहृत सम्मित उपदेश यह मित्र के द्वारा दिया उपदेश है। इस मे आज्ञा न होकर भावना होती है, उदाहरण होते है। इतिहास-पुराण के उपदेश इसी कोटि में आते है। ३) कान्तासम्मित उपदेश-में प्रेमोपदेश होता है। यह अधिक सरस होता है। साहित्य का उपदेश भी ऐसा ही प्रभावकारी होता है। साहित्य का उपदेश तो शक्कर में लिपटी हुई कुनैन की गोली के समान होता है। बिहारी के एक दोहे ने राजा जयसिंह का हृदय परिवर्तन कर दिया।

**"नहिं पराग नहिं मधुकर मधु नहिं विकास इहिं काल।**
**अली कली ही सौ बंध्यों, आगे कौन हवाल॥"**

आचार्य मम्मट के द्वारा प्रस्तुत इस प्रयोजन के अतिरिक्त संस्कृत के आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को भी साहित्य के प्रयोजन के रुप में स्वीकारा है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा पंडित जगन्नाथ पर आकर रुक जाती है। सभी ने आनंद को अत्याधिक महत्व दिया है। अपने युगीन परिवेश के अनुरुप साहित्य की प्रकृति के प्रतिकूल अन्य प्रयोजन भी उसपर लदवाने का प्रयास भी किया है।

**रीतिकालीन आचार्यों द्वारा प्रस्तुत काव्य प्रयोजन :**

रीतिकालीन आचार्यों ने भी काव्य-प्रयोजन पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है, परंतु उनमें मौलिकता का अभाव है। संस्कृताचार्यों के मतों का ही उन्होंने अनुकरण कर उनकी मान्यताओं को अपनी भाषा-भंगिमा में ढालकर प्रस्तुत किया है।

**आचार्य कुलपति** ने जो प्रयोजन दिए है उस पर मम्मट के काव्य प्रयोजनों का प्रभाव है या यूँ कहे कि मम्मट के ही प्रयोजन को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है। उनके ये छः प्रयोजन इस प्रकार है -

**"जस, संपत्ति, आनंद अति, दुखिन डारै खोई।**
**होत कवित्त ते चतुराई, जगत बाम बस होई॥**

अर्थात यश, धन, अलौकिक आनंद, दुखों का विनाश, लौकिक चातुर्य और पत्नी समान उपदेश ही काव्य के प्रयोजन है।

आचार्य देव ने केवल आनंद और यश को ही काव्य प्रयोजन माना है। उनके इ धारणा पर आ. भामह का प्रभाव दिखता है। वे कहते है -

**"उँच नीच अरु कर्म बस, चलो जात संसार।**
**रहत भव्य भगवंत जस, नव काव्य सुख-सार॥**

अर्थात छोटे-बडे कर्मों के अधिन संसार का रहाट तो चलता ही रहता है, परंतु ईश्व भक्ति से प्राप्त यश नव-काव्य से मिलनेवाला आनंद सुखों का सार है। देव ने आनंद औ यश को ही काव्य का मुख्य उद्देश्य माना है।

**आचार्य सोमनाथ** ने पाँच काव्य-प्रयोजन माने है। उनके इस मान्यतापर संस्कृत के आचार्यों का प्रभाव देखा जा सकता है विशेषतः आ. मम्मट का यथा -

**"कीरति वित्त विनोद अरु अति मंगल को देति।**
**करै भलो उपदेश नित वह कवित चित्त चेति॥**

अर्थात कीर्ति, धन संपत्ति, मनोरंजन, मंगल (आनंद) और उचित उपदेश यह काव्य के प्रयोजन है।

**आचार्य भिखारीदास** ने तप-पुँजो का फल (चतुवर्ग - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति) धन प्राप्ति, यश तथा अलौकिक आनंद को काव्य-प्रयोजन माना है। इनपर मम्मट का प्रभाव है।

रीतिकालीन इस सभी आचार्यों पर संस्कृत काव्यशास्त्र का गहरा प्रभाव रहा है। अतएवं इनका विशेष उल्लेखनीय ऐसा मौलिक योगदान नहीं के बराबर है। वे सभी आ. मम्मट के विचारों से प्रभावित दिखाई देते है।

**हिंदी के आधुनिक आचार्यों और कवियों द्वारा प्रस्तुत काव्य-प्रयोजन :**

हिंदी के आधुनिक विद्वान पाश्चात्य तथा युगीन परिस्थितियों से प्रायः प्रभावित रहे है उन्होंने लोकमंगल की भावना, जीवन की आलोचना, यश, मनोरंजन, शिक्षा, चरित्र-सुधार स्वातः सुखाय आदि को साहित्य का प्रयोजन माना है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने आनंद की अनुभूति और लोकहित की भावना को काव्य का प्रयोजन माना है -

**"जो गावहि ब्रज भक्त सब मधुरे सुर सुभ छंद।**
**रसना पावन करन को गावत सोह हरिश्चंद॥**

**आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी** के मतानुसार ज्ञान का विस्तार और आनंद की अनुभूति ही काव्य के प्रमुख प्रयोजन है। **श्रीधर पाठक** ने लोकमंगल की प्रेरणा को काव्य प्रयोजन माना है - "लोकवृत्ति को किसी उद्दिष्ट के सत्पथ पर ले जाकर उन्नति की लीक में अग्रेसर रखना बडी क्षमता का काम है। जो व्यक्ति इस क्षमता से रहित है, उसे साहित्य के कर्म खेत्र में पैर नहीं रखना चाहिए।" **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध'** ने आनंद और लोकमंगल को काव्य का प्रयोजन स्वीकारा है। **मैथिलीशरण गुप्त** नीत्युपदेश और आनंद को

साहित्य प्रयोजन माना है। वे कहते है - "केवल मनोरंजन कवि का कर्म नहीं होना चाहिए। उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

छायावादी कवि **जयशंकर प्रसाद** ने मनोरंजन तथा शिक्षा को साहित्य का प्रयोजन माना है। मनोरंजन का अभिप्राय कवि की दृष्टि में लोकोत्तर आनंद से है। **सुमित्रानंदन पंत** ने काव्य-प्रयोजन स्वान्त-सुखाय और लोकहिताय माना है। पंतजी का यह मत तुलसीदास की तरह है।

**महादेवी वर्मा** के मतानुसार काव्य का प्रयोजन मानव हृदय में समाज के प्रति विश्वास निर्माण करता है। उन्होंने लिखा है - "साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छंद मानव-स्वभाव में उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है।"

**आचार्य रामचंद्र शुक्ल** के अनुसार "कविता मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मंडल से उपर उठकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना जातियों के मार्मिक स्वरुप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टी के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।"

**मुक्तिबोध** ने साहित्य का उद्देश्य 'सांस्कृति परिष्कार' माना है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार 'आत्मसाक्षात्कार का नाम आनंद है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने लोकमंगल' पर बल दिया है। आज्ञेय ने साहित्य को स्वान्त सुखाय न मानकार लोकोन्मुख आत्मसत्य से प्राप्त सुख है।

इस प्रकार हिन्दी के कवि और विद्वानों ने जो प्रयोजन प्रस्तुत किये है उनमें प्रमुखतः कलानंद तथा साहित्य की उपयोगिता पर जोर दिया गया है। सभी ने आनंद को काव्य का प्रयोजन माना है।

**पाश्चात्य मतानुसार काव्य-प्रयोजन :**

भारत में भरतमुनि के समय से तथा यूरोप में प्लेटो के समय से लेकर अबतक के काव्यशास्त्रीय चिंतन में काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन माने गए है - आनंद और उपदेश। कलावादी विचारकों ने प्रथम प्रयोजन को स्वीकारते हुए काव्य को स्वायत्त और स्वयंपूर्ण माना है। उनके अनुसार 'कला कला के लिए है' किसी दूसरे लक्ष्य सिद्धि के लिए नहीं। एडगर ऐलन, वाल्टर पेटर, आस्कर वाईल्ड, डॉ. बॅडले, क्रोचे आदि सौंदर्य कलावादी विचारकों ने काव्य की आंतरिक विशेषताओं पर जोर दिया है। वे बाह्य प्रतिमानों से कला का मूल्यांकन नहीं करना चाहते तथा उपदेश और नैतिकता को कला की बाहर की वस्तु मानते है।

प्लेटो ने काव्य को नैतिक सुधार का साधन माना। अरस्तु ने ज्ञानार्जन या शिक्षा तथा आनंद को काव्य प्रयोजन स्वीकारा है। स्वच्छंदवादी आलोचकों ने भी आनंद को ही प्रमुख स्थान दिया है। कॉलरिज के अनुसार काव्य का प्रयोजन आनंद ही है और वह आनंद सौंदर्य